हिंदी बाल साहित्य के संवाहक के रूप में पत्रिकाएं : ऐतिहासिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

विकास कुमार

शोधार्थी,

हिन्दी विभाग, गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

सारांश: - बाल साहित्य वह साहित्य है जो विशेष रूप से बच्चों के मानसिक, भावनात्मक और बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखते हुए रचा जाता है। इसमें कहानियाँ, कविताएँ, चित्रकथाएँ, लोककथाएँ, शाब्दिक खेल आदि शामिल होते हैं। यह साहित्य न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि बालकों के नैतिक, सांस्कृतिक और भाषिक विकास का भी एक सशक्त माध्यम है। बाल साहित्य समाज के उस वर्ग को संबोधित करता है, जो सबसे अधिक जिज्ञासु, संवेदनशील और निर्माणशील होता है— अर्थात् बालक। हिंदी बाल साहित्य का विकास स्वतंत्र रूप से उस समय प्रारंभ हुआ जब समाज में बालकों की शिक्षा और मानसिक विकास को लेकर सजगता आई। इस विकास में पत्रिकाओं की भूमिका केंद्रीय रही है। यह शोधपत्र हिंदी बाल साहित्य के विकास में पत्रिकाओं की भूमिका का ऐतिहासिक और साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: बाल साहित्य, बाल पत्रिका, हिन्दी साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ

1.0 प्रस्तावना

साहित्य को विकसित, समृद्ध और सशक्त रूप में स्थापित करने में समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी रही है। एक ओर जहाँ इनकी पहुँच विशिष्ट वर्ग से लेकर सामान्य जनमानस तक समान रूप से होती है, वहीं दूसरी ओर ये पाठकों की मानसिक दिशा को गढ़ने में भी सहायक सिद्ध होती हैं। यही कारण है कि विश्व साहित्य की अनेक कालजयी रचनाएँ पुस्तक रूप में प्रकाशित होने से पूर्व पत्र-पत्रिकाओं में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होकर अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर चुकी हैं। यही स्थिति बाल साहित्य की भी रही है। यद्यपि आरंभिक काल में बाल पत्रिकाओं को अपेक्षित महत्व प्राप्त नहीं हो सका, किन्तु वर्तमान समय में न केवल उन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही है, बल्कि उनकी प्रसार संख्या भी कई बार वयस्कों की पत्रिकाओं की तुलना में अधिक रही है। 'चंदामामा' और 'चंपक' जैसी पत्रिकाएँ जब एक दर्जन से भी अधिक भाषाओं में प्रकाशित होकर बिक्री के कीर्तिमान स्थापित कर रही थीं, उस समय वयस्कों की कोई भी पत्रिका उनके समकक्ष नहीं पहुँच सकी थी।

बाल साहित्य की विकास यात्रा को विविध पत्रिकाओं ने अत्यंत सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित रूप में आगे बढ़ाया है। यद्यपि इस प्रक्रिया में समय-समय पर कुछ बाधाएँ भी आईं, तथापि बाल साहित्य का विकास सतत रूप से अपने गंतव्य की ओर अग्रसर होता रहा। प्रकाशन संस्थानों के आंतरिक कारणों के चलते 'पराग' जैसी महत्वपूर्ण बाल पत्रिका का असमय अवसान हो गया। 'पराग' को बाल पत्रिकाओं की ऊँचाइयों तक पहुँचाने का श्रेय उसके प्रतिष्ठित संपादकों हरिकृष्ण देवसरे, कन्हैयालाल नंदन आदि को जाता है। यद्यपि जब नंदन जी को संपादक नियुक्त किया गया, तब बाल साहित्य के क्षेत्र में उनकी कोई विशेष संलग्नता नहीं थी, तथापि उन्होंने अत्यंत कुशलता और प्रतिबद्धता के साथ 'पराग' को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं तथा बाल साहित्य

के क्षेत्र में अनेक नवीन और स्मरणीय मानदंड स्थापित किए।

कई प्रतिभावान बाल साहित्यकारों के उदय और उनकी प्रतिष्ठा का श्रेय निःसंदेह 'पराग' को दिया जा सकता है। एक साक्षात्कार में नंदन जी ने स्वीकार किया था—'बाल पत्रकारिता से मेरा जुड़ाव अनायास ही हुआ, किंतु जब जुड़ाव हुआ, तो मैंने इसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया। मैंने बच्चों के लिए एक भी कहानी नहीं लिखी थी और मुझे बाल पत्रकारिता का दायित्व सौंप दिया गया। कार्य के दौरान मुझे अनुभव हुआ कि बाल पत्रकारिता को अत्यंत सीमित दृष्टिकोण से देखा गया है—जैसे बच्चों की रुचि केवल कहानियों और कविताओं तक ही सीमित है। क्या बच्चे डायरी नहीं लिख सकते? क्या वे यात्रा-वृत्तांत नहीं पढ़ सकते? क्या हिंदी में रचित नवगीत बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते? क्या बच्चों के लिए नई बिंब-योजनाएँ नहीं बनाई जा सकतीं?' इन्हीं प्रश्नों पर विचार करते हुए मैंने ऐसे लेखकों को बाल साहित्य के क्षेत्र में आमंत्रित किया, जो प्रायः वयस्कों के लिए लेखन करते थे।'

बाल पत्रकारिता की विधिवत शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई। इससे पूर्व न तो बाल साहित्य को स्वतंत्र रूप में देखा जाता था और न ही बाल पत्रकारिता को कोई विशेष स्थान प्राप्त था। उस समय जो साहित्य वयस्कों के लिए रचा जाता था, उसी में से बच्चे अपनी रुचि के अनुरूप कुछ सामग्री छॉट लिया करते थे। तुलसीदास और सूरदास की राम और कृष्ण पर आधारित काव्य-रचनाओं में ही उन्हें आकर्षण दिखाई देता था, या फिर नीति विषयक रचनाएँ ही उनकी रुचि का विषय बनती थीं। यह तो कालांतर में जब बच्चों के मनोविज्ञान और भाव-जगत को समझने का प्रयास किया गया, तब जाकर बाल साहित्य के सृजन की आवश्यकता को गंभीरता से अनुभव किया गया।

एक बात बहुत स्पष्ट है कि बच्चों को साहित्यानुरागी बनाने का जो कार्य बाल पत्रिकाएँ बड़े ही सहज ढंग से कर लेती हैं वह शिक्षकों या अभिभावकों के लिए बहुत ही दुष्कर है। इसीलिए बाल पत्रिकाओं का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि ये बच्चों के विकास की दशा और दिशा निर्धारित करने में सर्वाधिक समर्थ हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी में बाल पत्रिकाओं की एक समृद्ध परम्परा प्रारम्भ से ही रही है। बच्चों को विद्यालय तो केवल पाठ्यक्रमानुसार ही शिक्षा प्रदान करते हैं किन्तु जीवन के पाठ्यक्रम की वास्तविक शिक्षा तो ये पत्रिकाएँ ही उपलब्ध कराती हैं। हिन्दी में बालसखा, शिशु, मनमोहन, लल्ला, बालविनोद, पराग, नन्दन, चन्दामामा, चम्पक, बालभारती, चकमक आदि बाल पत्रिकाओं की एक सुदीर्घ परम्परा है जिन्होंने न केवल स्वस्थ बाल साहित्य का प्रकाशन किया बल्कि अनेक बाल साहित्यकारों का निर्माण भी किया। यह हिन्दी बाल साहित्य की विडम्बना ही है कि इनमें से अधिकांश पत्रिकाएँ असमय ही दिवंगत हो गईं। सबसे बड़े दुःख की बात तो यह है कि इन पत्रिकाओं के बन्द होने का कारण उनका न चल पाना नहीं था बल्कि वे अपने प्रकाशन समूहों के आंतरिक कारणों के चलते बन्द हुईं। पराग इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। इन पत्रिकाओं के सम्पादकों ने व्यक्तिगत स्तर पर सम्पर्क करके लोगों का ध्यान बाल साहित्य की ओर आकृष्ट किया और सुयोग्य साहित्यकारों से उच्चकोटि का बाल साहित्य लिखवाया। पत्रिकाएँ भले ही अब इतिहास का हिस्सा बन गई हों किन्तु उनके माध्यम से जन्मे बाल साहित्यकार आज भी बाल साहित्य का भण्डार भरने के महनीय कार्य में पूरे मनोयोग से जुटे हुए हैं।

बाल पत्रिकाओं का इतिहास मात्र 120 वर्ष पुराना है।¹¹ 'बालदर्पण' को हिन्दी की सबसे पहली प्रकाशित बाल पत्रिका माना जा सकता है। इसके प्रथम अंक का प्रकाशन सन् 1882 ई. में हुआ था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के विशेष प्रयत्नों से प्रकाशित यह पत्रिका भारतेन्दु युग की अभूतपूर्व देन कही जा सकती है। इससे पहले बच्चों के लिए कुछ हस्तलिखित पत्र अवश्य मिलते हैं। ये अनियतकालीन पत्र अलग-अलग स्थानों से प्रकाशित होते थे। बालदर्पण के प्रकाशन के उपरान्त हस्तलिखित पत्रों की संख्या में खासी वृद्धि दृष्टिगोचर हुई। 'सन् 1940 के आसपास हिन्दी में लगभग 30 मुद्रित तथा सोलह हस्तलिखित बाल

पत्रिकाएँ निकलती थीं। हस्तलिखित पत्रों का प्रयास इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कहा जा सकता है कि इससे बच्चों की लेखन प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।ⁱⁱⁱ

'बालदर्पण' हिन्दी बाल साहित्य की प्रथम प्रकाशित पत्रिका तो बनी परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसा मूर्धन्य नाम साथ में जुड़े होने के बावजूद इसका प्रकाशन इस क्षेत्र में कोई क्रांति नहीं ला सका। इसीलिए इसके देखादेखी बाल पत्रिकाओं की कोई बाढ़ नहीं आई और लम्बे समय तक कोई अन्य महत्वपूर्ण बाल पत्रिका प्रकाशित नहीं हुई। किन्तु ऐसा भी न था कि इस क्षेत्र में पूरी तरह से सत्राटा पसरा हो। विभिन्न स्थानों से कुछ पत्रिकाएँ निकलीं किन्तु उनकी आयु अत्यन्त अल्प रही। ऐसी बाल पत्रिकाओं में 'बाल हितकर', 'छात्र हितैषी', 'बाल प्रभाकर', 'विद्यार्थी', 'मानीटर' आदि का प्रमुख स्थान है।

भारतेन्दु युग में जिस बाल पत्रकारिता का बीजारोपण हुआ था, वह आगे चलकर द्विवेदी युग में पुष्पित और पल्लवित हुई। इस काल में प्रकाशित होने वाली 'शिशु' और 'बालसखा' नामक बाल पत्रिकाओं को जबरदस्त लोकप्रियता प्राप्त हुई। बालसखा के अलावा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व प्रकाशित होने वाली बाल पत्रिकाओं में 'छात्र सहोदर', 'वीर बालक', 'बालक', 'खिलौना', 'चमचम', 'वानर', 'कुमार', 'अक्षय भैया', 'बाल विनोद', 'किशोर', 'तितली', 'होनहार', 'मदारी', 'बालबोध', 'बालहित', 'किशोर भारती' आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।^{iv}

इसके बाद भारत में स्वाधीनता की लहर फैल गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अन्य क्षेत्रों की भाँति बाल पत्रकारिता के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन परिलक्षित होने लगे। बड़ी संख्या में नयी बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, जिनमें से कई तो कुछेक अंक निकालने के बाद बन्द हो गईं जबकि कुछ का प्रकाशन अभी भी निरन्तर हो रहा है। ज्यादातर पत्रिकाएँ आर्थिक कारणों से बन्द हुईं।^v

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रकाशित होने वाली प्रमुख बाल पत्रिकाओं में 'बाल भारती', 'प्रकाश', 'मनमोहन', 'अमर कहानी', 'चन्दामामा', 'चुन्नू-मुन्नू', 'नहीं दुनिया', 'बालमित्र', 'जीवनशिक्षा', 'स्वतन्त्र बालक', 'पराग', 'नन्हे-मुन्ने', 'राजा बेटा', 'नन्दन', 'बालबन्धु', 'मीनू-टीनू', 'राजा भैया', 'फुलवारी' आदि पत्रिकाओं ने छठें दशक तक बाल पत्रकारिता के विकास रथ को बहुत ही शानदार तरीके से आगे बढ़ाया। बीसवीं सदी का सातवाँ दशक आते-आते विशुद्ध व्यावसायिक और पेशेवर प्रकाशकों की समझ में यह बात आ गई कि बाल पत्रकारिता के माध्यम से भी अच्छा-खासा धन अर्जित किया जा सकता है। परिणामस्वरूप बड़ों की तरह बच्चों की पत्रकारिता में व्यावसायिकता का प्रवेश हुआ।^{vi} इससे एक अच्छी बात तो यह हुई कि बाल पत्रिकाओं का कलेवर पहले से अधिक चित्ताकर्षक और बड़ा होने लगा, किन्तु एक बड़ा नुकसान यह भी हुआ कि बच्चों को क्या पढ़ाया जाना चाहिये इससे ज्यादा ध्यान इस बात पर दिया जाने लगा कि कौन सी सामग्री परोसकर पत्रिका की बिक्री बढ़ाई जा सकती है और विज्ञापनदाताओं को अधिक आकर्षित किया जा सकता है। इस मानसिकता के चलते बाल पत्रिकाओं में विषय-वस्तु पर चटपटापन हावी होता चला गया। जासूसी कहानियों और चित्रकथाओं की एकाएक भरमार होने लगी। कुछ पत्रिकाएँ तो केवल चित्रकथाओं, चुटकुलों और पहेलियों का संकलनमात्र बनकर रह गईं। यह कहना गलत न होगा कि पिछली सदी के सातवें और आठवें दशक बाल पत्रकारिता के इतिहास में ऐसे संक्रमण काल के रूप में स्मरण किये जायेंगे जब संख्यात्मक रूप से तो बाल पत्रिकाओं के क्षेत्र में क्रांति का अहसास हो रहा था किन्तु गुणवत्ता का निरन्तर हास हो रहा था। यही वह समय था जब पत्रिकाओं के समानान्तर ही पॉकेट बुक्स के प्रकाशकों ने भी बाल उपन्यासों का प्रकाशन कर व्यावसायिक अवसर का भरपूर लाभ उठाने के लिए कमर कस ली थी। बाल पत्रिकाओं के सम्पादक अपने प्रकाशकों की इच्छानुसार अपनी पत्रिकाओं में सस्ते किस्म के बाल उपन्यास भी धारावाहिक रूप से प्रकाशित करने लगे।^{vii}

सन् 1960 के बाद जिन बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ उनमें से 'बेसिक बालशिक्षा', 'बाललोक', 'फुलवारी', 'बाल

दुनिया', 'बाल वाटिका', 'रानी बिटिया', 'शेरसखा', 'नन्दन', 'मिलिन्द', 'जंगल', 'चमकते सितारे', 'बाल प्रभात', 'शिशुबन्धु', 'बाल-जगत', 'बच्चों का अखबार', 'नटखट', 'बालकुंज', 'चंपक', 'लोटपोट', 'चन्द्रखिलौना', 'बाल रंगभूमि', 'मुन्ना', 'गोलगप्पा', 'हिन्दी कॉमिक्स', 'महाबली कॉमिक्स', 'बच्चे और हम', 'गुरु-चेला', 'हँसती दुनिया', 'गुड़िया', 'किशोर मिलिन्द', 'बालबन्धु', 'शक्तिपुत्र', 'प्यारा बुलबुल', 'लल्लू पंजू', 'शावक', 'बालेश', 'बालरुचि', 'बालदर्शन', 'शिशुरंग', 'कलरव', 'आदर्श बालसखा', 'ओ राजा', 'बाल साहित्य समीक्षा', 'बाल पताका', 'मुस्कराते फूल', 'बाल कल्पना', 'मेला', 'देवपुत्र', 'राकेट', 'बालगान', 'बालरत्न', 'कुटकुट', 'नन्हे तारे', 'नन्हीं मुस्कान', 'आनन्ददीप', 'बालनगर', 'चन्दन', 'लल्लू जगधर', 'सुमन सौरभ', 'किलकारी', 'उपवन', 'चकमक', 'बाल कविता', 'अच्छे भैया', 'नये फूल धरती के', 'बालहंस', 'बालमंच', 'नन्हे सम्राट', 'किशोर लेखनी', 'बालमेला', 'समझ झरोखा', 'चम्पा', 'अंगूर के गुच्छे', 'मुन्ना-मुन्नी', 'बच्चों की दुनिया', 'बाल गोपाल', 'बाल ज्योति', 'चन्दा', 'छौना', 'घरौदा', 'दूध बताशा', 'झरना', 'तमाशा', 'बालवाणी' आदि बाल पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। उपर्युक्त प्रकाशित बाल पत्रिकाओं के अतिरिक्त हस्तलिखित बाल पत्रिकाओं ने भी बाल साहित्य के विकास में जो योगदान दिया है उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। कुछ प्रमुख हस्तलिखित बाल पत्रिकाओं के नाम इस प्रकार हैं - 'आशा', 'तरुण', 'परिन्दे', 'जीवन', 'आलोक', 'बाल मित्र', 'युवक', 'बालभारत', 'किरण', 'कल्पना', 'उदय', 'अंजलि', 'जीवन', 'पत्रिका', 'ज्योति', 'शारदा', 'बालेन्दु', 'शिखर', 'तरुणपुष्प', 'हिन्द शक्ति', 'सेवा' आदि।

स्वतंत्रता के बाद की पत्रिकाओं में बालमानस को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली पत्रिकाओं में चम्पक, चन्दामामा, पराग, नन्दन, बालभारती और बालहंस प्रमुख हैं। इनमें से दिल्ली प्रेस द्वारा प्रकाशित 'चम्पक' तो एक तरह से शिशुओं की ही पत्रिका है। इसकी ज्यादातर कहानियों के प्रमुख पात्र पशु-पक्षी होते हैं। 'पराग' का प्रकाशन बन्द हुए लगभग दस वर्ष होने को आये। बालभारती का प्रकाशन भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने सन् 1948 में प्रारम्भ किया था। सरकारी पत्रिका होने के नाते इसके सम्पादक जल्दी-जल्दी बदलते रहे। सावित्री देवी वर्मा तथा द्रोणवीर कोहली ने सामग्री संकलन, छपाई तथा प्रस्तुति पर विशेष ध्यान दिया। इनके कार्यकाल में बालभारती की लोकप्रियता निरंतर बढ़ती गई। आजकल इसका प्रकाशन मात्र औपचारिकता होकर रह गया है। बाल भारती ने बच्चों के लिए अनेक रोचक और संग्रहणीय विशेषांक निकाले।

'चन्दामामा' का प्रकाशन मद्रास से सन् 1949 में प्रारम्भ हुआ। हिन्दी बाल पत्रिकाओं में यह अकेली ऐसी मासिक पत्रिका है जिसका प्रकाशन कई भाषाओं में होता है। चित्ताकर्षक बहुरंगी छपाई के कारण कहानियों की यह पत्रिका बच्चों में बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गई। इसकी कहानियाँ मुख्यतः ऐतिहासिक तथा पौराणिक प्रसंगों पर आधारित होती हैं। इसका मूल लक्ष्य भारतीय बच्चों को प्राचीन जीवन मूल्यों से परिचित कराना है। बालशौरि रेड्डी के सम्पादनकाल में इस पत्रिका का सर्वाधिक प्रसार हुआ।

'पराग' का प्रकाशन टाइम्स ऑफ इण्डिया ग्रुप ने मार्च 1958 में बम्बई से प्रारम्भ किया। सत्यकाम विद्यालंकार इसके प्रथम सम्पादक थे। बाद में यह दायित्व आनन्द प्रकाश जैन ने संभाला। उनके योग्य सम्पादन ने पराग को बाल साहित्य सृजन की नई दिशा दी। बाल एकांकियों का नियमित प्रकाशन सबसे पहले पराग ने प्रारम्भ किया। बाद में इसका प्रकाशन स्थल बम्बई से बदलकर दिल्ली कर दिया गया। यहाँ इसके स्वरूप के साथ किये गये खिलवाड़ ने पत्रिका की लोकप्रियता को काफी धक्का पहुँचाया। कुछ समय के लिए इसे किशोरों की पत्रिका कर दिया गया। ऐसा होते ही इसकी प्रसार संख्या में जबरदस्त गिरावट आने लगी जिसकी वजह से इसे पुनः बाल पत्रिका बनाकर पुराने स्वरूप में परिवर्तित कर दिया गया। कन्हैयालाल नन्दन के सम्पादन काल में इस पत्रिका ने लोकप्रियता के अनेक नये कीर्तिमान रचे, किन्तु अन्ततः टाइम्स की अन्य पत्रिकाओं के साथ यह भी असमय ही काल के गाल में समा गई।^{viii} तमाम उतार-चढ़ावों के बीच हिन्दुस्तान टाइम्स की पत्रिका 'नन्दन'

अभी भी बच्चों में लोकप्रिय बनी हुई है। जयप्रकाश भारती के संपादन काल में इस पत्रिका ने अनेक संग्रहणीय अंक निकाले। भूतपूर्व प्रधानमंत्रियों श्रीमती इंदिरा गांधी और मोरारजी समेत विभिन्न क्षेत्रों के अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों ने इसमें बच्चों के लिए लेख लिखे।¹⁰ राजस्थान पत्रिका प्रकाशन समूह की पत्रिका बालहंस ने भी बालसाहित्य के संवर्द्धन में सराहनीय योगदान दिया है।

प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक हिन्दी बाल पत्रकारिता ने एक लम्बा और संघर्षपूर्ण सफर तय किया है। इसने एक शताब्दी से अधिक कालखण्ड में अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि हिन्दी साहित्य के प्रबुद्ध समीक्षक, इतिहासकार और साहित्य के तथाकथित संरक्षकों ने बाल साहित्य और बाल पत्रकारिता को अपेक्षित मान्यता नहीं दी है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाल साहित्यकारों को केवल उनके रचनात्मक योगदान के आधार पर अभी तक समुचित स्थान नहीं प्राप्त हो सका है। यदि बाल साहित्य की उपेक्षा ऐसी रही है, तो बाल पत्रकारिता की स्थिति और भी अधिक चिंता का विषय बन जाती है।

हालाँकि, हाल के वर्षों में इस उपेक्षा के विरुद्ध कुछ सकारात्मक संकेत अवश्य देखने को मिले हैं। उदाहरण स्वरूप, कोटा विश्वविद्यालय द्वारा पत्रकारिता के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में 'बाल पत्रकारिता' को सम्मिलित करना एक सराहनीय पहल है। इसी क्रम में डॉ. सुरेन्द्र विक्रम द्वारा रचित पुस्तक 'हिन्दी बाल पत्रकारिता: उद्भव और विकास' इस क्षेत्र की ऐतिहासिक यात्रा और विकास को चिन्हित करने का स्तुत्य प्रयास है। जहाँ तक बाल पत्रकारिता की संभावनाओं का प्रश्न है, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में अभी भी पर्याप्त कार्य की आवश्यकता शेष है। आवश्यकता इस बात की है कि बाल पत्रिकाओं को पर्याप्त संरक्षण और प्रोत्साहन प्राप्त हो, जिससे उनकी समय से पूर्व समाप्ति रोकी जा सके। यद्यपि कुछ पत्रिकाएँ बन्द हुई हैं, परन्तु अनेक नवीन पत्रिकाओं का प्रकाशन भी आरम्भ हुआ है। उदाहरणार्थ, भोपाल से प्रकाशित पत्रिका 'स्नेह' ने अल्प समय में ही ख्याति अर्जित की है।

किसी भी बाल पत्रिका की सफलता मुख्यतः उसके सम्पादक की दृष्टि, संवेदनशीलता और कार्य-कुशलता पर निर्भर करती है। यह आवश्यक नहीं कि सम्पादक स्वयं एक श्रेष्ठ बाल लेखक हो, किन्तु यह अनिवार्य है कि वह बाल मनोविज्ञान की गहन समझ रखता हो तथा यह जानता हो कि उसके पाठकों की रुचि, जिज्ञासा और बौद्धिक आवश्यकता कैसी है। बच्चों की मानसिक दुनिया वयस्कों से भिन्न होती है, अतः बाल पत्रिकाओं का सम्पादन भी एक भिन्न और विशिष्ट दृष्टिकोण की माँग करता है। इन पत्रिकाओं का प्रमुख उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवनोपयोगी मार्गदर्शन भी है। इस कसौटी पर खरे उतरने की जिम्मेदारी सम्पादक की होती है। चूँकि ये पत्रिकाएँ सीधे बच्चों से जुड़ती हैं, अतः इनकी भाषा सरल, बाल-सुलभ तथा बाल मनोविज्ञान के अनुकूल होनी चाहिए। जटिल भाषा, कृत्रिम शब्दावली अथवा उपदेशात्मक शैली से बच्चे सहज दूरी बना लेते हैं। भाषा की कठिनता बच्चों को सम्पूर्ण पत्रिका से विमुख कर सकती है। सम्भवतः इसीलिए बाल साहित्य को सर्वाधिक कठिन और श्रमसाध्य सृजनात्मक कार्य माना गया है।

बाल पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री की विषयवस्तु भी बाल-रुचि, जिज्ञासा और यथार्थ के अनुरूप होनी चाहिए। आज का बालक पूर्ववर्ती पीढ़ियों की तुलना में मानसिक रूप से अधिक सजग, जागरूक और जटिल वातावरण में जी रहा है। तकनीक, इंटरनेट और टेलीविज़न ने उसकी कल्पनाओं को विस्तार तो दिया है, किन्तु उसे असमंजस और ऊहापोह की स्थिति में भी ला खड़ा किया है। वर्तमान समय के बच्चों के मन में उत्पन्न होने वाले विविध प्रश्नों की उपेक्षा अथवा अनुत्तरित स्थिति दीर्घकालिक रूप से घातक हो सकती है।

इस सन्दर्भ में बाल पत्रिकाओं को चाहिए कि वे यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए बालकों की मानसिक आवश्यकताओं के

अनुरूप रचनात्मक, शिक्षाप्रद और प्रेरणास्पद सामग्री प्रस्तुत करें। ज्ञान और मनोरंजन के मध्य संतुलन बनाते हुए उन्हें ऐसा माध्यम बनना होगा, जो न केवल बच्चों को आकर्षित करे, बल्कि उनके समग्र व्यक्तित्व विकास में भी सहायक हो। बाल पत्रिकाओं की उपयोगिता उनकी भौतिक गुणवत्ता पर भी निर्भर करती है। बालक प्रकृति से ही चंचल होते हैं—कभी पत्रिका को खिलौने की तरह प्रयोग करते हैं, तो कभी तकिया बनाकर उसी पर सो जाते हैं। अतः पत्रिकाओं का टिकाऊपन और निर्माण की गुणवत्ता भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वर्तमान में पत्रिकाओं के मूल्य में निरन्तर हो रही वृद्धि भी एक बड़ी बाधा के रूप में उभर रही है। मध्यमवर्गीय अभिभावकों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वे प्रतिमाह महँगी बाल पत्रिकाओं को नियमित रूप से खरीद सकें। अतः यह आवश्यक है कि पत्रिकाओं का मूल्य नियंत्रित हो और उनमें ऐसी सामग्री प्रस्तुत की जाए, जो अभिभावकों को आर्थिक निवेश के रूप में उचित प्रतीत हो। बच्चों को बाल पत्रिकाओं तक सहज पहुँच दिलाने में बाल पुस्तकालयों की स्थापना अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती है। इस दिशा में केन्द्र और राज्य सरकारों को पहल करनी चाहिए, साथ ही समाजसेवी संस्थाओं और निजी क्षेत्र को भी सहभागिता निभानी चाहिए।

2.0 संदर्भ -

ⁱ ब्रह्मानन्द, पत्रिकाओं की घटती प्रसार संख्या, प्रांकुर, नवम्बर 1999

ⁱⁱ डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, हिन्दी बाल साहित्य के विकास में बाल पत्रिकाओं का योगदान, भारतीय बाल साहित्य के विविध आयाम, पृ. 265

ⁱⁱⁱ वही, पृ. 265

^{iv} वही, पृ. 266

^v डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, बाल पत्रकारिता, पृ. 108

^{vi} अपर्णा खरे, व्यवसाय बनती बाल पत्रकारिता, नई दुनिया, 28 जनवरी 1999

^{vii} वही

^{viii} वही

^{ix} डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, हिन्दी बाल साहित्य, पृ. 111